हज़ की तारीख़

इबराहीम (अलै0) की औलाद में बुतपरस्ती का रिवाज।

हज़रत इसमाईल (अलै0) के बाद उनकी औलाद तक उस दीन पर कायम रही जिसपर उनके बाप उनको छोड़ गए थे। बहरहाल कुछ सदियों में ऐ लोग अपने बुजुर्गों की तालीम और उसके सब भूल–भाल गये और धीरे धीरे उनमें वे सब गुमराहियाँ पैदा हो गईं जो दूसरी जाहिल क़ौमों में फैली हुई थीं। इसी काबा में, जिसे एक ख़ुदा की इबादत के लिए दावत व तबलीग का मरकज़ बनाया गया था, सैकड़ों बुत रख दिये गये थे और ग़जब यह है कि ख़ुद हज़रत इबराहिम और हज़रत इसमाईल (अलै0) का भी बुत (Statue) बना डाला गया, जिनकी सारी जिन्दगी बुतों ही की परस्तिश मिटाने में सिर्फ हुई थी। इबराहीम हनीफ की औलाद ने लात, मनात, हुबल, नस्र, यगूस, उज़्ज़ा, असाफ़, नायला और ख़ुदा जाने किस–किस नाम के बुत बनाए और उनको पूजा। चॉद, अतारिद (बुध ग्रह), जुहरा (वृहस्पति ग्रह), जुहल और पता नहीं किस–किस सितारे को पूजा। जिन्न, भूत, प्रेत, फ़रिश्तों और अपने मुर्दा बुजुर्गों की रूहों को पूजा। जिहालत का जोर यहाँ तक बढ़ा कि जब घर से निकलते और अपना ख़ानदानी बुत उन्हें पूजने को न मिलता तो रास्ता चलते में जो अच्छा सा चिकना पत्थर मिल जाता, उसी को पूज डालते और पत्थर भी न मिलता तो मिट्टी को पानी से गूँधकर एक पिण्ड–सा बना लेते और बकरी का दूध छिड़कते ही वह बेजान पिण्ड उनका खुदा बना जाता।

हज़ में बिगाड़ की शक्लें।

शायरों के मुक़ाबले–

उस जाहिलियत के जमाने में हज की जो हालत थी, उसका अन्दाज़ा आप इससे कर सकते हैं कि यह एक मेला था, जो हर साल लगता था। बड़े–बड़े क़बीले अपने–अपने जत्थों के साथ यहॉ आते और अपने–अपने पड़ाव अलग–अलग डालते, हर कबीले का शायर यह भाँड अपनी और क़बीलेवालों की बहादुरी, नामवरी, इज़्ज़त, ताकत और सख़ावत की तारीफ में जमीन व आसमान के कुलाबे मिलाता और हर एक डींगें मारने में दूसरे से बढ़ जाने की कोशिश करता, यहाँ तक कि एक–दूसरे की बुराई करने तक की नौबत पहुँच जाती।

झूठी सख़ावत के मुजाहिदे–

फिर फ़ैयाजी का मुक़ाबला होता! हर कबीले के सरदार अपनी बढ़ाई जताने के लिए देगें चढ़ाते और एक–दूसरे को नीचा दिखाने के लिए ऊँच पर ऊँच काटते चले जाते। इस फ़िजूलख़र्ची से उन लोगों का मक़सद इसके सिवा कुछ न था कि इस मेले के मौके पर उनका नाम सारे अरब में ऊँचा हो जाए और ये चर्चे हो कि फ़लॉ साहब ने इतने ऊँच ज़बह किए और फ़लॉ साहब ने इतनों को खाना खिलाया। इन मजलिसों में राग–रंग, शराबख़ोरी, जिना और हर क़िस्म की फ़हशकारी ख़ूब धड़ल्ले से होती थी और ख़ुदा का ख़याल मुशकिल ही से किसी को आता था।

नंगा तवाफ –

काबे के गिर्द तवाफ़ होता था। मगर किस तरह? औरत –मर्द सब नंगे होकर घूमते थे और कहते थे कि हम उसी हालत में ख़ुदा के सामने जाएँगें, जिसमें हमारी माओं ने हमे जना है। इबराहीम (अलै0) की मसजिद में इबादत होती थी। मगर कैसी ? तालियाँ पीटी जातीं, सीटियाँ बजाई जातीं और नरसिंघे फूँके जाते। ख़ुदा का नाम पुकारा जाता। मगर किस शान से ? कहते थे –

कुरबानी का तसव्वुर –

ख़ुदा के नाम पर वे कुरबानियाँ भी करते थे, मगर किस बदतमीजी के साथ? कुरबानी का ख़ून काबा की दीवारो से लथेड़ा जाता और गोश्त दरवाज़े पर डाला जाता, इस ख़याल से ही (अल्लाह की पनाह) यह गोश्त और खून ख़ुदा को मतलूब (अपेक्षित) है।

दुआए ख़लील (अलै0) की क़बूलियत–

यह हालत तक़रीबन दो हजार साल तक क़ायम रही। इस लम्बी मुद्द में कोई नबी अरब में पैदा नहीं हुआ, न किसी नबी की असल तालीम अरब के लोगों तक पहुँची। आखिरकार हज़रत इबराहीम(अलै0) की उस दुआ के पूरा होने का वक्त आया जो उन्होने काबा की दीवारें उठाते वक्त अल्लाह से मॉगी थी–

''परवरदिगार ! इनके बीच एक पैग़म्बर ख़ुद इन्हीं की कौम में से भेजियो, जो इन्हें तेरी आयतें सुनाए और किताब और हिकमत की तालीम दे और इसके अखलाक़ दुरूस्त करें''।

चुनॉचे हज़रत इबराहीम (अलै0) की औलाद से फिर एक इनसाने कामिल उठा, जिसका पाक नाम 'मुहम्मद(सल्ल0) बिन अब्दुल्लाह' था।

फिर जिस तरह हज़रत इबराहीम (अलै0) ने तमाम गलत अक़ीदों और तमाम झूठे ख़ुदाओं की खुदाई मिटान के लिए जिद्दोजुहद की थी और एक ख़ुदा की बंदगी फैलाने की कोशिश की थी, बिलकुल वही काम हज़रत मुहम्मद (सल्ल0) ने भी किया; और फिर उसी असली और वेलौस (विशुद्ध) दीन को ताज़ा कर दिया जिसे हज़रत इबराहीम (अलै0) लेकर आए थे। इक्कीस साल की मुद्दत में जब यह सारा काम आप (सल्ल0) पुरा कर चुके तो अल्लाह के हुक्म से आप (सल्ल0) ने फिर उसी तरह काबा को सारी दुनिया के ख़ुदापरस्तों का मरक़ज बनाने का एलान किया और फिर वही मुनादी की कि सब तरफ़ से हज के लिए इस मरकज़ की तरफ़ जाओ।

और लोगों पर अल्लाह का हक़ है कि जो कोई इस घर तक आने की कुदरत (सामर्थ्य) रखता हो, वह हज के लिए आए, फिर जो कोई कुफ्र करे (यानी सामर्थ्य के होते हुए भी न आए) तो अल्लाह तमाम दुनियावालों से बेनियाज़ है। (कुरआन, 3:97)

बुतपरस्ती का ख़ातमा

काबे के सारे बुत तोड़ दिए गए, ख़ुदा के सिवा दूसरों की जो पूजा हो रही थी, वह पूरी तरह रोक दी गई। सारी जाहिलियत की रस्में मिटा दी गईं। मेले–ठेले और तमाशे बन्द कर दिए गए और हुक्म दिया गया कि अब जो इबादत का तरीक़ा बताया जा रहा है, उसी तरीक़े से यहाँ अल्लाह की इबादत करो–

बेहूदा कामों पर रोक–

हज में न शहवानी काम किए जाएँ, न फिस्क़ व फुजूर हो, न लड़ाई–झगड़े हों।

फिर जब अपने हज के मनासिक अदा कर चुको तो याद करो अल्लाह को जिस तरह तुम अपने बाप–दादों को याद करते थे, बल्कि उससे भी बढ़ कर। (कुरआर, 2:200)

सिर्फ़ अल्लाह के नाम से जानवर ज़बह किए जाएँ ताकि ख़ुशहाल लोगों की कुरबानी से ग़रीब से ग़रीब हाजियों को भी खाने का मौका मिल जाय–

खाओ–पियो, मगर फिजूल ख़र्च करनेवालों को पसन्द नहीं करता। (कुरआर, 7:31)

इन जानवरों को ख़ालिस अल्लाह के लिए उसी के नाम पर कुरबान करो, फिर जब उनकी पीठें ज़मीन पर ठहर जाएँ (यानी जब जान पूरी तरह निकल चुके और हरकत बाक़ी न रहें) तो ख़ुद भी उनमें से खाओं और क़िनाअत करनेवालों को भी खिलाओ और ज़रूरतमंद सायल को भी। (कुरआर, 22:36)

कुरबानी का ख़ून और गोश्त लथेडना मना–

अल्लाह को इन जानवरों के गोश्त और ख़ून नहीं पहुँचते, बल्कि तुम्हारी परहेज़गारी व ख़ुदातरसी पहुँचती है। (कुरआर, 22:37)

नंगे होकर तवाफ की मनाही

नंगे होकर तवाफ़ करने से बिलकुल रोक दिया गया और कहा गया ऐ नबी! उनसे कहो कि किसने अल्लाह की उस ज़ीनत को हराम किया जो उसने अपने बन्दों के लिए निकाली थी (यानी लिबास)? (कुरआर, 7:32)

ऐ आदम की औलाद! हर इबादत के वक़्त अपनी ज़ीनत (यानी लिबास) पहने रहा करो। (कुरआर, 7:31)

सफ़र का ख़र्च लेने का हुक्म

सफ़र का ख़र्च लिए बिना हज के लिए निकलने से मना किया गया और कहा गया–

सफ़र का ख़र्च ज़रूर लो, क्योंकि (दुनिया में सफ़र का ख़र्च न लेना आख़िरत का सामान नहीं है) सबसे अच्छा आख़िरत का सामान तो तक़वा है। (कुरआर, 2:197)

एक ही नारा, तलबिया

हाज़िर हूँ मेरे अल्लाह! मैं हाज़िर हूँ, हाज़िर हूँ, तेरा कोई शरीक नहीं, मैं हाज़िर हूँ। बेशक तारीफ़ सब तेरे ही लिए है। नेमत सब तेरी ही है। सारी बादशाही तेरी है, तेरा कोई शरीक नहीं।

ऐसे ही पाक व साफ़, बेलौस, और मुख़लिसाना हज के बारे में नबी (सल्ल0) ने फ़रमाया–

जिसने अल्लाह के लिए हज किया और उसमें शहवात और दूसरे गुनाहों से परहेज़ किया, वह इस तरह पलटा जैसे आज ही अपनी मॉ के पेट से पैदा हुआ है।

<u>फ़रीज़–ए–हज की अहमियत–</u>

और लोगों पर अल्लाह का हक़ है कि जो उस घर तक पहुँचने की कुदरत रखता हो, वह उसका हज करे और जिसने कुफ्र किया तो अल्लाह तमाम दुनियावालों से बेनियाज़ है।'' (कुरआन, 3:97)

इस आयत में कुदरत रखने के बावजूद जान–बूझकर हज न करने को कुफ्र कहा गया है। इसकी तशरीह (सल्ल0) की इन दो हदीसों से होती है–

जो आदमी रास्ते का ख़ाना और सवारी रखता हो, जिससे बैतुल्लाह (हरम) तक पहुँच सकता हो और फिर हज़ न करे तो उसका इस हालत पर मरना और यहूदी या ईसाई होकर मरना बिलकुल बराबर है।

जिसको न किसी बड़ी ज़रूरत ने हज से रोका हो न किसी ज़ालिम हाकिम ने, न किसी रोकनेवाले मर्ज ने, और फिर उसने हज न किया जो और इसी हालत में उसे मौत आ जाए तो उसे इख़तियार है भले ही वह यहूदी बनकर मरे या ईसाई बनकर और इसी तफ़सीर (व्याख्या) हज़रत उमर (रजि0) ने की जब कहा कि –

जो लोग कुदरत रखने के बाद भी हज नहीं करते, मेरा जी चाहता है कि उनपर जिज़िया लगा दूँ, वे मुसलमान नहीं हैं, वे मुसलमान नहीं है।